THE TIMES OF INDIA

Date: 28-09-18

No Moral Policing

SC does well to decriminalise adultery, emphasise that husband is not master of wife

TOI Editorials

Continuing a week of weighty judgments, the Supreme Court of India said yesterday that while adultery can be a ground for divorce it just does not fit the concept of a crime. Section 497 IPC was accordingly scrapped unanimously by a five-judge constitutional bench. This provision criminalising adultery dates back to 1860. Given the epochal shifts towards gender equality, privacy and individual rights that have taken place in more than one and a half centuries that have elapsed, it was long past expiry date. The court concluded that not only is treating adultery as an offence tantamount to the state entering the private realm, Section 497 further erred in treating women as chattel. Today husband is not the master of wife.

To underline, Justice Indu Malhotra writes that the state must follow a minimalist approach in the criminalisation of offences, while respecting the autonomy of individuals over their personal choices. She also questions the thinking behind Section 497 whereby "a married woman, who voluntarily enters into a sexual relationship with another married man, is a 'victim', and the male offender is the 'seducer'." Government had taken a status quoist position in the matter, saying that "diluting" the adultery law would impact the sanctity of marriages. The only updation it suggested was making the law gender-neutral, render-ing the wife too eligible for arrest.

This was a clear failure to comprehend why the law was an anachronism in the first place, where a rights-based modern jurisprudence seeks to respect rather than police diverse relationships between consenting adults. Everyone should be free to choose their own versions of love, intimacy, sex and marriage. From recognising privacy as a fundamental right to demolishing Section 377 IPC that denied homosexual citizens the right to pursue their sexual orientation, the Supreme Court has emerged as a champion of individual liberties. Other institutions must follow suit. Consider the shocking police behaviour in a video that has circulated out of Meerut this week, where they beat and abuse a woman for choosing to be with a Muslim man. She said later that she was coerced into filing a false rape case against him. Authorities need to ditch medieval mindsets. They must go by laws rather than some capricious social morality. And laws should be in the spirit of the 21st, not the 19th century.

Date: 28-09-18

THE ECONOMIC TIMES

Ending a Patronising, Patriarchal Law

ET Editorials

The Supreme Court has, in a welcome move, decriminalised adultery. Declaring Section 497 of the Indian Penal Code as unconstitutional, because it was paradoxically skewed against women in an adulterous relationship even as it 'protected' them from punishment, the court has confined the 'offence' of adultery as a civil wrong that can be used — by the woman as well as the man — to dissolve a marriage. Unlike, say, domestic violence, which is also a crime, adultery can now only be a ground for divorce. At the heart of the decriminalised law lies the offensive notion of a wife as chattel, or the husband's personal property.

So, even as Section 497 forbade the woman from being punished — only the man in an adulterous relationship was up for punishment — the corresponding Section 198 of the Code of Criminal Procedure ensured that the husband alone had the right to file a case against the 'other man'. The court has found such a testosterone-etched representation of 'stolen property' to be abhorrent and in opposition to Article 14 (equality) and Article 15 (prohibition of discrimination on the basis of caste, religion and gender).

In 2003, the Justice Malimath Committee had suggested making Section 497 'gender neutral' — letting the woman also file a criminal case against 'the other woman'. But the apex court has rightly sidestepped this option, taking cognisance of the ground realities in a largely patriarchal society, which would have seen the continued de facto approval of a misogynistic view of both marriage and adultery. Instead, it has ushered a level-playing field in which the dissolution of marriage, where both husband and wife have equal say, can be the result of an extramarital relationship.

Date: 28-09-18

दैनिक भास्कर

समाज का कोर्ट के फैसले की ऊंचाई तक पहुंचना मुश्किल

संपादकीय

सुप्रीम कोर्ट ने विवाहेतर संबंध को दंडनीय बनाने वाले भारतीय दंड संहिता के कानून की धारा ४९७ को अवैध और मनमाना घोषित कर दिया है लेकिन, समाज इसे स्वीकार करने को कितना तैयार है इस पर संदेह है। इस धारा में पांच साल की सजा, जुर्माना या दोनों का प्रावधान था। न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा १९८ (१) और १९८ (२) को भी खत्म कर दिया है, जिसके तहत पति उस व्यक्ति के विरुद्ध मामला दर्ज कर सकता था, जिसने उसकी पत्नी के साथ

ऐसा संबंध स्थापित किया है। अदालत ने इस कानून को संविधान के मौलिक अधिकारों अनुच्छेद १४ और अनुच्छेद २१ के आधार पर खारिज किया है। इसमें से पहला अधिकार बराबरी का अधिकार है तो दूसरा जीवन का अधिकार। मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा की पांच सदस्यीय पीठ में चार जजों ने अलग-अलग लेकिन, एक-दूसरे को समर्थन देने वाले चार फैसले लिखे हैं और कहा है कि पति, पत्नी का मालिक नहीं है।

दोनों को समाज और संविधान ने बराबर का हक दिया है, इसलिए अगर पत्नी सहमति से किसी बालिग व्यक्ति के साथ संबंध बनाती है तो उसे दंडित नहीं किया जा सकता। अदालत ने इस काम को एक दीवानी स्तर की गलती मानी है और उसे विवाह के विच्छेद का आधार माना है। हां, इतना जरूर कहा है कि अगर कोई व्यक्ति पत्नी के इन संबंधों से दुखी होकर आत्महत्या कर लेता है तो उसे उकसाने के अपराध में शामिल किया जाएगा। दरअसल ईसाइयत, इस्लाम दोनों में जारकर्म को गंभीर अपराध माना गया है। १९६० में मैकाले ने जो कानून बनाया उस पर इसी सोच का प्रभाव था। भारतीय समाज जारकर्म को स्वीकार भले न करता हो लेकिन वहां अलग-अलग समाजों में इसके लिए अलगअलग व्यवस्था थी। यही कारण है कि यह कानून पारम्परिक समाज में तो परेशानी पैदा करता ही था और आधुनिक समाज में भी संकीर्णता उत्पन्न करता था। हालांकि, पत्नी के बेवफा होने पर मरने-मारने को आमादा समाज सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले को कैसे स्वीकार करेगा, यह देखा जाना है। वह अन्य फैसलों की तरह विधायिका से इसे पलटने की भी मांग कर सकता है। फिर भी अगर वह इसे स्वीकार करता है तो मानना पड़ेगा कि समलैंगिकता को वैध घोषित करने के बाद जारकर्म को भी वैधता देने वाली न्यायपालिका ने भारतीय समाज को आगे बढ़ने में काफी मदद की है।

जनसत्ता

Date: 27-09-18

आधार की मंजिल

संपादकीय

लंबे समय से आधार को लेकर चला आ रहा विवाद और असमंजस अब एक हद तक तो खत्म हो गया है। सुप्रीम कोर्ट ने साफ कर दिया है कि आधार की जरूरत कहां होगी और कहां नहीं। हालांकि सर्वोच्च अदालत ने इसकी संवैधानिक वैधता से इनकार नहीं किया है। लेकिन आम जनता के लिए फिलहाल यह राहत की बात इसलिए है कि सिर्फ आधार कार्ड नहीं होने की वजह से लोगों को तमाम तरह की दिक्कतें झेलनी पड़ रही थीं। सबसे विकट समस्या तो तब खड़ी हुई जब स्कूलों में दाखिले के लिए आधार को अनिवार्य बना दिया गया और लोगों को छोटे-छोटे बच्चों को लेकर आधार बनवाने के लिए घंटों कतारों में गुजारने पड़े। इसी तरह अदालत के पिछले निर्देश के पहले तक बैंकों ने खाते को आधार से जोड़ने के लिए ग्राहकों की नाक में दम कर दिया था। मोबाइल सेवा प्रदाता कंपनियों ने उपभोक्ताओं को मोबाइल नंबर आधार से जोड़ने को मजबूर किया और नए कनेक्शनों के लिए भी इसे जरूरी कर दिया। इन सबका नतीजा यह हुआ कि आधार नंबर के जरिए मोबाइल और बैंक खातों में सेंध लगने की घटनाएं जिस तेजी से सामने आईं, उनसे आधार की सुरक्षा को लेकर गंभीर सवाल खड़े हो गए। यह धारणा बनते देर नहीं लगी कि आधार सुरक्षित नहीं है।

कंपनियों को नंबर बेचने तक का धंधा चल निकला। हालांकि जब भी आधार की सुरक्षा को लेकर सवाल उठे, तब भारतीय विशिष्ट पहचान पत्र प्राधिकरण (यूआइएआइडी) ने आधार डाटा की सुरक्षा को लेकर भरोसा दिया और ऐसी खबरों का

खंडन कर अपना पिंड छुड़ाया। दरअसल, आधार की बुनियाद और अवधारणा शुरू से ही कमजोर और संदेहास्पद रही है। संविधान पीठ भी इस बारे में कई बिंदुओं पर एकमत नहीं रहा। इसलिए पीठ ने निजी कंपनियों को आधार के आंकड़े जुटाने की अनुमति देने वाली आधार कानून की धारा-57 को रद्द कर दिया है। लोकसभा में आधार विधेयक को धन विधेयक के रूप में पारित कराने को पीठ ने बहुमत से सही ठहराया और कहा कि आधार कानून में ऐसा कुछ भी नहीं है जो किसी व्यक्ति की निजता का उल्लंघन करता हो। लेकिन पीठ के एक सदस्य न्यायमूर्ति चंद्रचूड़ ने साफ कहा कि आधार कानून को लोकसभा में धन विधेयक के रूप में पारित नहीं किया जाना चाहिए था, क्योंकि आधार कानून धन विधेयक से अलग था। उन्होंने इसे संविधान के साथ धोखाधड़ी करार दिया और आधार कानून को खारिज करने की वकालत की। उन्होंने कहा कि आधार कार्यक्रम सूचना की निजता, स्वनिर्णय और डेटा सुरक्षा का उल्लंघन करता है। आधार को लेकर ये टिप्पणियां गंभीर खतरे का संकेत मानी जानी चाहिए।

यूआइडीएआइ ने स्वीकार किया है कि वह महत्त्वपूर्ण सूचनाओं को एकत्र और जमा करता है और यह निजता के अधिकार का उल्लंघन है। इन आंकड़ों का व्यक्ति की सहमति के बगैर कोई तीसरा पक्ष या निजी कंपनियां दुरुपयोग कर सकती हैं। ऐसे में सवाल उठता है कि आधार की सुरक्षा कैसे सुनिश्चित होगी। अगर आधार कानून को लेकर मन में सवाल बने रहते हैं तो इसकी प्रासंगिकता और उपयोगिता स्वत: सवालों के घेरे में आ जाती है। आधार के पीछे बुनियादी बात यह थी कि देश के हर नागरिक का एक ऐसा पहचान पत्र बनाया जाए जो उसकी हर तरह से पहचान को सुनिश्चित करता हो। लेकिन एकमात्र पहचान-पत्र की कसौटी पर यह खरा उतरता हो, ऐसा नजर नहीं आता। कई मामलों में अदालत ने आधार बनवाने से फौरी राहत भले दे दी हो, लेकिन अब आधार बनवाना इसलिए मजबूरी होगा कि इसके बिना न तो पैन कार्ड बनेगा और न ही आयकर रिटर्न दाखिल की जा सकेगी। इसमें कोई संशय नहीं कि आधार की सुरक्षा को लेकर जोखिम और बढ़ सकते हैं, लेकिन बिना आधार बनवाए काम नहीं चलेगा।

नईदुनिया

Date: 27-09-18

सुरक्षा कवच से लैस हो आधार

पवन दुग्गल, (लेखक सुप्रीम कोर्ट में अधिवक्ता, साइबर लॉ के विशेषज्ञ और इंटरनेशनल कमीशन ऑन साइबर लॉ के चेयरमैन हैं)

आधार पर सुप्रीम कोर्ट के फैसले से आखिरकार ऊहापोह का एक लंबा दौर खत्म हुआ। शीर्ष अदालत के फैसले ने राष्ट्रीय पहचान से जुड़े इस दस्तावेज को लेकर कई बातें स्पष्ट कर दी हैं। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के बाद यह मानने के अच्छे-भले कारण हैं कि आधार भारतीय जनजीवन का केंद्रबिंदु बन गया है। अब आधार को विधिक मान्यता मिल गई है। कुछ अपवादों को छोड़कर सुप्रीम कोर्ट ने आधार अधिनियम को संवैधानिक मान्यता प्रदान कर दी। इसे सरकार और आम लोगों, दोनों के लिए ही राहत भरा कहा जा सकता है। जहां

सरकार को कल्याणकारी योजनाओं के वितरण में आधार की अनिवार्यता की मंजूरी मिल गई, तो वहीं आम लोगों को तमाम सेवाओं के लिए निजी कंपनियों को आधार की जानकारी साझा करने की बाध्यता से मुक्ति मिल गई। इसके लिए अदालत ने आधार एक्ट की धारा 57 को अवैध घोषित किया। हालांकि सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले ने आधार को संवैधानिक आवरण जरूर मुहैया करा दिया, लेकिन उसकी चुनौतियां कम नहीं हुई हैं। सरकार भले ही अपनी पीठ थपथपा ले, पंरतु अब आधार को लेकर उसका रुख-रवैया ही भविष्य में उसकी सफलता और सुरक्षा की दशा-दिशा तय करेगा। इसे इस तरह कहा जा सकता है कि आधार को लेकर अदालत ने तो अपना कर्तव्य निभा दिया, लेकिन सरकार का असल काम अभी शेष है।

यह किसी से छिपा नहीं कि आधार को लेकर सबसे ज्यादा बवाल उससे जुड़ी जानकारियों के लीक होने के मसले पर हुआ। इसमें कई निजी कंपनियों की भूमिका संदिग्ध मानी गई। आधार के नियमन का जिम्मा संभालने वाले भारतीय विशिष्ट पहचान प्राधिकरण यानी यूआईडीएआई ने पिछले साल आधार की सूचनाओं के चलते साइबर सुरक्षा को पैदा हुए खतरे के मामले में 50 से ज्यादा एफआईआर दर्ज कराई थीं। इस लिहाज से कोई मोबाइल कनेक्शन लेने से लेकर अन्य सेवाओं-सुविधाओं के लिए आधार की अनिवार्यता खत्म करने से लोगों को निश्चित रूप से राहत मिलेगी और उनकी निजी जानकारियों के दुरुपयोग की आशंका घटेगी। यह वर्तमान और भविष्य के लिहाज से तो ठीक है, लेकिन इससे अतीत में दी गई जानकारियों को लेकर निश्चिंत नहीं हुआ जा सकता। ऐसे में सरकार के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती यह होगी कि निजी कंपनियों के पास आधार से जुड़ी जो जानकारियां हैं, उन्हें कैसे नष्ट किया जाए या वापस लाया जाए। सरकार को यह भी सुनिश्चित करना होगा कि उन जानकारियों का कोई दुरुपयोग भी न होने पाए। यह एक तरह से जिन्न् को वापस बोतल में बंद करने जैसा काम होगा।

सरकार के समक्ष दो स्तर पर चुनौतियां हैं- एक कानूनी स्तर है और दूसरा तकनीकी। मौजूदा आधार अधिनियम में जानकारियां लीक होने की सूरत में कड़े प्रावधानों का अभाव है, तो सरकार को कानून में आवश्यक संशोधनों के माध्यम से कुछ सख्त कदम उठाने होंगे। जल्दबाजी में कानून को पारित कराने के फेर में सरकार इसे पूरी तरह चाक-चौबंद नहीं बना पाई। दूसरे, यानी तकनीकी मोर्चे पर सरकार को यह सुनिश्चित करना होगा कि इस डिजिटल जानकारी के महासागर में कोई हैकर सेंधमारी न कर सके। इस मामले में सरकार की ओर से दलील दी गई है कि आधार डाटा 64 बिट फॉर्मेट में इनक्रिप्ट किया गया है, जो पूरी तरह सुरक्षित है, लेकिन मौजूदा दौर में ईजाद किए जा चुके शक्तिशाली क्वांटम कंप्यूटरों के माध्यम से इसके अलॉगरिदम में सेंध की आशंका समाप्त नहीं हो जाती। इस संदर्भ में यह तर्क गले नहीं उतरता कि आधार की जानकारी 13 फीट ऊंची दीवारों के दायरे में महफूज है, क्योंकि हैकरों को दीवार लांघने की दरकार नहीं होती और वे सात समंदर पार से भी अपने काम को अंजाम दे सकते हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि राष्ट्रीय पहचान एक बेहद गतिशील और निरंतर आकार लेने वाली कवायद है। इसकी अपनी जटिलताएं हैं, जिनसे विकसित देशों को भी पार पाने में मुश्किल पेश आती है। शायद यही वजह है कि ब्रिटेन दस साल पहले ही अपने राष्ट्रीय पहचान अभियान पर विराम लगा चुका और ऑस्ट्रेलिया ने अभी हाल में ऐसा किया है। भारत भी इन समस्याओं से अछूता नहीं रहा है। आधार की शुरुआत से ही उसमें कई खामियां थीं। इसे राष्ट्रीय पहचान के प्रमाणन के रूप में ही देखा गया और इसकी साइबर सुरक्षा के जोखिमों की अनदेखी की गई। इसी वजह से समय के साथ इससे विवाद भी जुड़ते गए। आधार को एक सख्त डाटा सुरक्षा कानून के साथ जोड़ने की जरूरत है। हालांकि सरकार श्रीकृष्णा समिति की सिफारिशों के आधार पर एक सामान्य डाटा सुरक्षा कानून बनाने पर विचार कर रही है, लेकिन आधार की व्यापकता को देखते हुए उसके लिए एक विशेष कानून की आवश्यकता महसूस होती है। तभी आधार की साइबर सुरक्षा

सुनिश्चित होगी और वह प्रभावी औजार सिद्ध होगा और आसन्न् खतरों को लेकर उसमें प्रतिरोधक क्षमता विकसित हो पाएगी।

समय के साथ आधार का दायरा जितना विस्तृत हुआ, उसके साथ चुनौतियां भी उसी अनुपात में बढ़ती गई हैं। शुरुआत में इसे राशन कार्ड जैसे पहचान पत्र की तरह ही लिया गया और लोग इसकी बायोमेट्रिक पहचान को हल्के में लेते रहे, जिसका उन्हें खामियाजा भी भुगतना पड़ा। नतीजतन, आए दिन लोगों की जानकारियां लीक होने की सूचनाएं आने लगीं। इसका अर्थ यह था कि आधार से जुड़ा हमारा तंत्र जिम्मेदार और जवाबदेह नहीं रहा। एक ऐसे वक्त जब आधार एक महत्वपूर्ण सूचना ढांचे का रूप ले चुका है, तब उसे लेकर सतर्कता और बढ़ानी होगी। इसके माध्यम से देश के लोगों की इतनी जानकारियां जुटाई जा चुकी हैं कि कोई दुश्मन देश साइबर हमले के माध्यम से हमारी व्यवस्था की बुनियाद हिला सकता है। इससे हमारे देश की संप्रभुता भी खतरे में पड़ सकती है।

सुप्रीम कोर्ट के फैसले के बावजूद आधार की राह में खतरे कम नहीं हुए हैं। अब इन खतरों से निपटने की जरूरत है। आधार में सरकार एक सेवाप्रदाता या प्रोत्साहक की भूमिका में है, जहां हम सभी अंशधारक हैं। ऐसे में इस तंत्र से जुड़े सभी पक्षों को उचित रूप से परिभाषित किया जाए। सरकार को आधार को लेकर लोगों को इसके लिए जागरूक भी करना होगा कि वे अनावश्यक रूप से आधार की जानकारी साझा न करें। लोगों को भी यह समझना होगा कि यह केवल एक संख्या या पहचान मात्र नहीं, बल्कि उनकी तमाम महत्वपूर्ण जानकारियों का पुलिंदा है, जिसका गट्ठर खुलने में उन्हें ही सबसे ज्यादा नुकसान हो सकता है। आधार पर आए फैसले ने सरकार के समक्ष यह चुनौती बढ़ा दी है कि वह इस पहचान पत्र की हर मोर्चे पर बेहतर तरीके से किलेबंदी करे। साथ एक नागरिक और समुदाय के स्तर पर हमें भी अपनी जिम्मेदारी महसूस कर उसका उचित रूप से निर्वहन करना होगा। आधार भारत को सशक्त बनाने का एक महत्वपूर्ण उपकरण साबित हो सकता है। यदि हमने इन सभी बातों पर ध्यान दिया तो निश्चित ही आधार हमारी सामाजिक व आर्थिक प्रगति का आधार बनने की क्षमता रखता है।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 27-09-18

प्रोन्नति में आरक्षण

संपादकीय

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रोन्नति में आरक्षण का रास्ता फिर से साफ करना अपेक्षित था। इससे पहले जून में भी इस पर अंतरिम फैसला देते हुए न्यायालय ने कहा था कि जब तक अंतिम फैसला नहीं आ जाता तब तक प्रोन्नति में आरक्षण पर कोई रोक नहीं है। हालांकि सर्वोच्च न्यायालय ने अपनी ओर से स्पष्ट फैसला देने की जगह इसे राज्यों पर छोड़ दिया है। यानी राज्य सरकार चाहें तो प्रोन्नति में आरक्षण दे सकती है। वस्तुत: शीर्ष न्यायालय ने 2006 के नागराज मामले के अपने फैसले में जो दो शत्रे लगाई थीं, उनका विरोध आरक्षण समर्थकों एवं सरकार ने किया था। इनमें एक तो यह था कि प्रोन्नति में आरक्षण देने के पहले यह देखा जाए कि उनका पर्याप्त प्रतिनिधित्व है या नहीं और दूसरा प्रशासनिक दक्षता को नकारात्मक तौर पर प्रभावित नहीं करने से जुड़ा था। सामान्य शब्दों में कहें तो सरकार

अनुसूचित जाति और जनजाति को प्रोन्नति में आरक्षण तभी दे सकती है, जब आंकड़ों के आधार पर तय हो कि उनका प्रतिनिधित्व कम है और वह प्रशासन की मजबूती के लिए जरूरी है।

हालांकि राज्य सरकारों को संविधान के अनुच्छेद 16-4ए और अनुच्छेद 16-4बी के तहत अनुसूचित जाति-जनजाति कर्मचारियों को प्रोन्नति में आरक्षण देने के प्राप्त अधिकार को तब भी समाप्त नहीं किया था किंतु इन दो शतरे के कारण इसको अमल में लाने में कठिनाई आ रही थी। इसके खिलाफही न्यायालय में याचिकाएं डालीं गई थीं। न्यायालय ने बस इतना किया है कि उन शतरे को हटा दिया है। तो अब स्थिति पूर्ववत है। प्रोन्नति में आरक्षण पर हमेशा से दो राय रही है। एक राय यह है कि, जिसे आरक्षण के तहत नौकरी मिल गई उसे प्रोन्नति उसके कार्यप्रदर्शन के आधार पर दिया जाए। दूसरी राय यह है कि उन जातियों को अपने मानसिक और शारीरिक विकास के लिए वैसी सुविधाएं और वातावरण नहीं मिलते जैसे दूसरी जातियों को मिल जाते हैं। इसलिए उनको प्रोन्नति में भी आरक्षण मिलना चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के बाद यह बहस बंद हो जाएगी इसकी उम्मीद नहीं करनी चाहिए। प्रोन्नति में आरक्षण के विरोध में सबसे बड़ा तर्क यही दिया जाता है कि इससे परिश्रम और दक्षता से काम करने वाले सामान्य वर्ग के कर्मचारियों-अधिकारियों के मनोविज्ञान पर नकारात्मक असर पड़ता है। यह चलता रहेगा। जब संपूर्ण आरक्षण पर ही आज तक देश में सहमति नहीं है तो प्रोन्नति के संदर्भ में ऐसा कहां से हो सकता है?